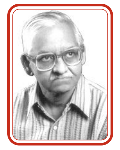
(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ
M.Sc., Ph.D.

वर्ष-25 मार्च-2015 अंक-3

क्या आधार है कि यह, ''मैं'' हूं; और यह ''मैं'' नहीं ?

आपके इन्द्रिय बोध के दायरे में जो कुछ है, वह आप हैं; और जो कुछ इस इन्द्रिय बोध से बाहर है, वे दूसरे हैं।

आपके इन्द्रिय बोध की सीमाओं के भीतर जो है, उसे आप ''मैं'' और ''मेरा'' के तौर पर महसूस करते हैं यह आप को स्वर्ग जैसा लगता है; और बाकी चीज़े नरक के समान। तो इस स्वर्ग का अनुभव ही सम्बन्ध बनाने का आधार है। अब अगर आप अपने आसपास के जीवन को अपने हिस्से के रूप में अनुभव करने लगते हैं, तो जीने का तरीका ही बदल जाएगा। अब आपके सम्बन्ध; दूसरों की जरूरतों की ओर ध्यान देने का जरिया बन जाएंगे। अब स्वयं की जरूरतें नहीं बचीं। योग के मायने है-जुड़ना।

तो आप खास तरह की चेतना में काम करते हैं।
तब आप अपने रिश्तों को सच्चा आशीर्वाद बना सकते हैं।
'जहां न तड़प होगी, न संघर्ष होगा।

-सद् गुरु बंटूर (anandiahar.com)

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

पंजीकरण संख्या : 280/2013
हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346
Facebook : dhyansatsangsabha@gmail.com

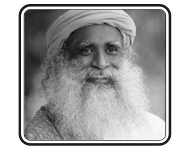
सद्गुरु

बच्चों को क्या दें, क्या नहीं ?

सद्गुरु (anandiahar.com)

''जो चीज सबसे महत्वपूर्ण है, वह आपके भीतर ही है।''

सबसे पहली बात तो आपको यह समझनी होगी कि आपके बच्चे पर सिर्फ आपका असर नहीं होता; बल्कि बहुत सारी दूसरी ताकतें भी उन पर असर डालती हैं। दूसरी ताकतों से मेरा मतलब शिक्षकों से नहीं है। बच्चों पर उनका असर बेहद कम हो गया है।

मेरा मतलब दोस्तों, फेसबुक, टीवी और कई दूसरी चीजों से है। तो जाहिर है, आपका असर बच्चों पर धीरे धीरे कम हो रहा है।

पुराने जमाने में चार पांच साल तक बच्चा पूरी तरह से माँ के असर में रहता था। फिर पिता की भूमिका शुरू होती थी। जब बच्चे चौदह पन्द्रह साल के होते–तब उनके दोस्त और दूसरी चीजें उन पर असर डालना शुरू करती थीं। लेकिन अब ऐसा नहीं है।

आपका तीन साल का बच्चा टीवी से चिपका रहता है; और आपको यह पता भी नहीं होता कि टीवी में चल रही चीजों को वह किस तरह से समझ रहा है ?

कोई खूबसूरत दुनिया की बात करता है; तो कोई उसे बम से उड़ाने की। दो या तीन साल का बच्चा; अगर लगातार ऐसीचीजों को देखेगा तो भविष्य पर इसका कोई अच्छा असर तो पड़ेगा नहीं।

क्या आप बच्चे के हाथ में तेज धार वाला चाकू दे देंगे?

आज आपके पास जो तकनीक है, उसकी धार चाकू से भी ज्यादा तेज है। आपको सुनिश्चित करना होगा कि

ऐसी तकनीकों से उसका परिचय तब हो–जब उसकी उम्र और परिपक्वता का स्तर, उस तकनीक को संभालने लायक हो।

आपके पास कम्प्यूटर है, क्या सिर्फ इसीलिए आपको अपने चार साल के बेटे को कम्प्यूटर सिखा देनाचाहिए? आधुनिक होने की कोशिश में हम; वह सब करने लगे हैं–जो पश्चिमी देशों के लोग कर रहे हैं और परेशान हो रहे हैं।

अमेरिका में यूवा छह घंटे रोजाना वीडियो गेम में गुजारते हैं। ये उम्र तो जीवन बनाने की होती है। 28 साल का युवा वीडियो गेम्स पर पैसे लगा कर दस लाख डॉलर सालाना कमा रहा था।

लेकिन उसे फिजियोथेरेपिस्ट कसरत न कराए—तो वह शरीर को हिला भी नहीं सकता।

अमीरी का इससे बुरा नतीजा नहीं हो सकता। अगर पैसा, आपकी भलाई नहीं कर रहा, एक स्वस्थ और बेहतर जीवन नहीं दे रहा—तो उसका क्या लाभ?

अगर पैसा कमाकर आपकी ये हालत है—तो ऐसे पैसे का क्या फायदा? ❑

24.7.1893
17.5.1970

मानव जीवन का तात्पर्य एवं उसके उद्देश्य

✍ **पंडित श्री ऋषिराम**

हम इस दुनिया को जानना चाहते हैं। केवल मात्र, जीना ही हमारा लक्ष्य नहीं है। पशु अपनी इच्छाओं से संतुष्ट व सुरक्षित है; जब कि मानव, इच्छाओं के साथ साथ प्रश्न भी कर बैठता है-

मैं कौन हूं? मेरा क्या उद्देश्य है? इन इन्द्रियों और बुद्धि के पीछे कौन काम कर रहा है? क्या 'वह' कोई तत्व ज्ञानी है? क्या तुम उसकी प्रतिच्छाया हो? क्या तुम दूसरों के द्वारा चलाए जाते हो?

पशुओं के सम्मुख ऐसी कोई समस्या नहीं है। हम धनी होना चाहते हैं-किन्तु किसी पड़ोसी के घर पर डाका मार कर नहीं। हम सभी सुखों का आनन्द उठाना चाहते हैं; किन्तु समाज में हमें, केवल अपने सीमित दायरे में रहना होता है। मानव जीवन, केवल मात्र सन्तोष नहीं है; इसके कुछ ऊंचे आदर्श भी हैं। इसी कारण, प्रत्येक के जीवन में नैतिक तत्वों का समावेश भी होता रहता है। यह मनुष्य और पशु में अंतर है। इन्हीं प्रश्नों के कारण उसे दु:खों और संघर्षों का सामना करना पड़ता है। जब एक व्यक्ति कहता है कि यह संसार अच्छा नहीं है और उसके रहने लायक नहीं है—तो स्पष्ट है कि उसके दिमाग में इस से अच्छे संसार का एक चित्र बना हुआ है। यही मानव जीवन की विशेषता है।

वह लक्ष्य क्या है? यह निश्चित है कि उद्देश्य है, जरूर। इन प्रश्नों का साधन है—हमारी बुद्धि।

मेरी बुद्धि संसार में काम करती है—क्योंकि एक विश्वीय बुद्धि (Universal Intellect), इस के पीछे कार्यरत है। यदि कोई एक विश्वीय बुद्धि इस संसार के पीछे काम न करे—तो मेरी बुद्धि भी काम नहीं कर सकती। यह बुद्धि विश्व का एक भाग होने के कारण—किसी सत्य की खोज करती है। इस संसार में विश्वीय शक्ति (Unversal Energy) काम कर रही है। यदि मेरी बुद्धि स्वार्थ रहित है, तथा मैं यदि ज्ञान प्राप्ति का जिज्ञासू हूं—तो मैं निश्चित रूप से इस विश्वीय शक्ति की खोज कर रहा हूं—जो कि सांसारिक शक्तियों से कहीं ऊपर है।

ध्यान (Meditation) एवं ज्ञान (Spiritual Knowledge) द्वारा; यही शक्ति हमारी सेवक बन जाती है।

प्रश्न : ईसाई धर्म सिखाता है कि हम पड़ोसी को उतना ही प्यार करें, जितना कि हम स्वयं को करते हैं। किन्तु यदि वह, स्वयं में असन्तुष्ट है तो फिर वह पड़ोसी को क्या प्यार करेगा?

उत्तर : मेरे मित्र कहते हैं कि यदि एक व्यक्ति स्वयं ही असंतुष्ट है; तो वह दूसरे को क्या और कैसे प्यार कर सकता है? यह ठीक है कि यदि तुम्हारा व्यक्तित्व बंटा हुआ है और तुम्हारे जीवन में समता नहीं है—तब तुम क्रोध ही प्रदर्शित करोगे। इसके अतिरिक्त; और कर भी क्या सकते हो? किन्तु जब तुम्हारी अपने आप में समता होगी, तब ही तुम दूसरों के साथ रहकर—आनंद का अनुभव कर सकते हो। अगर तुम्हारी अपने आप में समता नहीं, तो तुम्हारा व्यक्तित्व टुकड़ों में बंट जाएगा। और उस समय तुम दूसरों को प्यार दे सकोगे—ऐसी आशा, उस स्थिति में नहीं की जा सकती।

प्रश्न : वास्तव में यह एक सांसारिक प्रभाव है; या दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि कभी हम पड़ोसी को प्यार कर सकते हैं; कभी नहीं।

उत्तर : नहीं, तुम्हारा वास्तविक स्वभाव पड़ोसी को प्यार करना ही है। अगर तुम उनको प्यार नहीं करते—तो इसका अर्थ है, तुम दु:ख उठा रहे हो। तुम अपनी

समता में नहीं हो। जैसा के मैंने कहा कि मेरा शरीर तभी दु:ख उठाता है—जब हम उसकी अवहेलना करते हैं; यह रोग कहलाता है। इसी प्रकार जब मेरी बुद्धि समता में नहीं रहती; तो तुम कह सकते हो कि वह पाप कर रही है, या गल्त है; या कुछ और। हमें अपने आपको ठीक रखना है। ❑

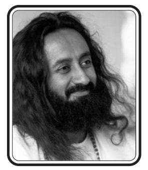

योग्य-अयोग्य; दोनों के लिए जरूरी है—ध्यान

✍ श्री श्री रविशंकर

आपने कभी गौर किया है कि जब आप चलते हैं तो एक पांव जमीन से छूता है; और दूसरा आगे बढ़ता है? यदि आपका पांव एक ही जगह जमीन में धंस जाए, तो आप वहीं खड़े रह जाएंगे। प्रगति रुक जाएगी—जीवन में। इसी प्रकार रहो संसार में।

लेकिन इसे मन में जमा कर मत रखो—तभी आगे बढ़ पाओगे; इससे मुक्त हो पाआगे।

तीन तरह के आकाश होते है :- भूताकाश, चित्ताकाश, चिदाकाश।

चित्ताकाश में तुम मन में किसी की कल्पना करके बैठोगे—तो उस कल्पना की एक दुनिया बना लोगे। किसी मूर्ति या चित्र के बारे में सोच, सोचकर—वैसा ही तुम्हारे मन में भी प्रकट होने लगेगा; पर यही बड़ी बात नहीं है।

थोड़ी देर के लिए तुम्हारा मन भी शांत हो जायेगा; किन्तु उससे तृप्ति नहीं होगी।

तृप्ति; अपनी आत्मा में, अन्तरात्मा की गहराई में उतरने पर ही होगी। जहां सब नाम रूप शांत हो जाते हैं; और यह सब ध्यान और मौन से ही संभव है। तुम्हारे अन्दर चेतना में जो एक उत्साह, एवं शक्ति जागृत होती है कि जीवन में खाने और सोने के अलावा, कुछ और भी है; और यह—जो 'कुछ और' है; मुझे जीवन में चाहिए।

यह इच्छा ही कुंडलिनी शक्ति है।

आगे चलकर इसके अलग अलग रूप होते हैं; जो आन्तरिक मौन व शांत भाव में

बैठकर ही समझ में आते हैं; और यह कठिन नहीं है।

मीरा बाई ने गाया है—

'सहज मिले अविनाशी'; यानी सहज है सब। यह प्रेम से संभव हैं जहां प्रेम हो जाएगा, वहीं मन की चंचलता समाप्त हो जाती है।

मान लीजिए, आपको अपने बच्चों की याद आने लगे—तो उनके ध्यान में एकाग्रता आ जाती है कि नहीं? किन्तु हम यहां आसक्ति नहीं; प्रेम की बात कह रहे हैं। दूसरी तरफ यदि किसी वस्तु, परिस्थिति या व्यक्ति के साथ आपका प्रेम जुड़ जाता है—तो चिन्ता भी साथ आ जाती है। चिन्ता इसकी सूचक है—कि आसक्ति सहित मन लगा है। एकाग्रता तो आ गई किन्तु शांति नहीं आयी।

ध्यान में बैठने से—यह मन अपने आप शान्त होने लगता है।

जो जीवन की आपाधापी से थक गये हैं—उनके लिये मैं कहूंगा कि आप ध्यान करो। मौन में चले जाओ। थके-हारे तुम कुछ भी नहीं कर पाओगे। इसलिए जब थक जाते हो—अन्दर जाओ,

अंतमुर्खी सदा सुखी

जो अन्दर झांकता है, थोड़ी देर विश्राम (Relax) करता है, वह हमेशा सुखी रहता है। इतनी एनर्जी मिलती हे, इतनी शक्ति प्राप्त होती है, बल प्राप्त होता है और योग्यता प्राप्त होती है।

अयोग्य व्यक्ति के लिए भी ध्यान करना बहुत आवश्यक है; ताकि वह योग्य बन जाए

और योग्य व्यक्ति को भी ध्यान करना जरूरी है—ताकि योग्यता बनी रहे—जो हमारे में क्षमता है—वह छूट ना जाए। इसलिए योग्य व्यक्ति को भी रोज ध्यान करना चाहिए।

थोड़ी थोड़ी देर बैठ कर ध्यान करो—मौन हो जाओ।

तब अंदरूनी शक्ति बढ़ती है—तबियत ठीक रहती है, स्वास्थ्य ठीक रहता है, मन प्रसन्न होगा, बुद्धि तीक्ष्ण रहेगी, जीवन में खुशी पैदा होगी और जो हम इच्छा करते हैं—वह काम सहजता से पूरा होने लगता है। इसलिए हर एक को थोड़ी थोड़ी देर बैठकर योग और ध्यान का अभ्यास करना जरूरी है। ठीक है ना.... ❑

चेतावनी

श्री हरि राम दास फर्माते हैं :–

जबलग साँई याद करि, तब लग पिंजर सास।
हरिया पाँणी ओस का, अैसी तन की आस॥

मात न तात न भ्रात सुत, सगा न सूंदरि साथि।
हरीया जासी हेकलौ, करि बोलाडू हाथि॥

या नर देही पायकै, भज्यौ नहीं करतार।
अैसो औसर बौहरि कै, मिलै न वारुंवार॥

हरिया सब जुग जात है, थिर नहीं दीषै कोय।
राम नाम थिर एक है, का कोई हरिजन होय॥

श्रीहरिरामजी जीव को चेतावनी देते हुए, उसे सावधान करते हुए कहते हैं—रे मानव! जब तक इस शरीर रूपी पिंजरे में श्वास चल रही है, तब तक अपने साईं—प्रभु को याद कर ले। इस शरीर का भरोसा मत कर। यह तो पानी के ओस की बूंद के समान (क्षणिक) है। माता, पिता, भाई, पुत्र, मित्र, पत्नी—कोई भी अन्त समय में साथ देने वाला नहीं है। तू अकेला ही आया है; और अकेला ही दोनों हाथ फैलाकर चला जायेगा। अत: सावधान हो जा। इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर तुमने यदि ईश्वर का भजन नहीं किया—तो ऐसा अवसर तुझे बार—बार नहीं मिलेगा। यह सारा जगत् नश्वर है, क्षणिक है। यहां की कोई भी वस्तु स्थिर रहने वाली नहीं है। केवल 'एक' नाम ही स्थिर है—शाश्वत है। अत: उसी का आश्रय लो; और प्रभु के प्रेमी बन जाओ।

संत कबीर के अनुसार : सुमरण बिन, गोते खाओगे

सुमरण बिन गोते खाओगे, सुमरण बिन गोते खाओगे।
क्या लेकर जन्म लिया है? क्या लेकर के जाओगे?
मुट्ठी बन्धे जन्म लिया है, हाथ पसारे जाओगे।
यह तन है कागज की पुड़िया, बून्द पड़े गल जाओगे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सुमरण बिना पछताओगे।

सुमरण बिन गोते खाओगे, सुमरण बिन गोते खाओगे।

श्वेताश्वर उपनिषद कहती है –

अंगुष्ठमात्र: पुरुषोअन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्ट:।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

अर्थात् यह पुरुष अंगुष्ठ मात्र आत्मा के भीतर मनुष्यों के हृदय में सन्निविष्ट है। हृदय से, बुद्धि से और मन से उसे पाया जाता है। जो यह जानते हैं वे अमृत हो जाते हैं। जीवात्मा का निवास स्थान मनुष्य का हृदय प्रवेश है। ❑

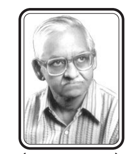
(1936–2009)

आत्मोत्थान के कर्म

✍ **डॉ० शम्भूनाथ**

सगुण मन ही जीवात्मा है। निर्गुण मन जड़ है। और जहां जीवात्मा है—वहीं कर्म है। यहां हम उन जीवात्माओं की बात कर रहे हैं, जो शरीर धारण करते हैं। जीवात्मा हमेशा ही अपूर्ण है; और वह पूर्णता की ओर, कर्म द्वारा ही अग्रसर हो सकता है। इसीलिए कहा गया है कि जहां जीवन है, वहीं कर्म है। संत तुलसी दास ने भी कहा है कि–

कर्म प्रधान विस्व करि राखा।
जो जस करई सो तस फल चाखा॥

मात्र मनुष्य के जीवन में, कर्म ही स्वतन्त्रता सर्वोच्च स्तर की है। इसीलिए मनुष्य के लिए कहा गया है कि वह जैसा करता है, वैसा भरता है। यद्यपि हर स्तर की जीवात्मा के लिए यह सत्य है कि जैसा कर्म होगा, वैसा ही जीवन होगा। समाज में इस बात की पुष्टि ऐसे भी होती है कि अलग-अलग क्षेत्र के मनुष्यों के कर्म हमेशा भिन्न-भिन्न ही होते हैं। उदाहरण के लिए सुनार, लोहार, बढ़ई, फोटोग्राफर, इन्जीनियर, डॉक्टर आदि के कर्म, भिन्न-भिन्न ही होते हैं।

उनके कर्मों के आधार पर ही, ऊपर कुछ नाम बताए गए हैं। मात्र ये नाम, हमें बता देते हैं कि उनके कर्म कैसे हैं?

अर्थात् उनके जीवन के विषय में हम कुछ अनुमान मात्र, इस जानकारी से लगा

लेते हैं कि वह वकील है, या चार्टर एकाउटेंट है, या जज है आदि। समाज में कुछ विशेष तरह के कर्म वाले व्यक्तियों का कुछ ज्यादा मान सम्मान होता है और कुछ का कम मान सम्मान होता है। दूसरे शब्दों में कर्म के आधार पर ही मनुष्य को मान सम्मान अर्थात् फल मिल जाता है। उपरोक्त उदाहरण मात्र मनुष्यों के कर्मों के विषय में दिए गए हैं; जिनके लिए सन्त तुलसी दास ने लिखा है :-

बड़े भाग मानुष्य तन पावा।
सुर दुर्लभ सदग्रन्थहिं गावा॥

अर्थात् मनुष्य के अतिरिक्त भी, न मालूम कितने जीव हैं; और उनके कर्म भी भिन्न भिन्न ही होते हैं। मात्र जीव का नाम सुनकर मनुष्य उनके कर्मों के विषय में अनुमान लगा लेते हैं; और इन कर्मों के आधार पर मनुष्यों के मन में अलग अलग तरह के भाव उत्पन्न होने लगते हैं। समाज में अलग अलग प्रकृति के मनुष्य भी मिलते हैं। कोई कुत्ता, बिल्ली या तोता, मैना जैसे पक्षियों को पालना पसन्द करते हैं। कहने का अर्थ यह है कि कुछ जानवरों के कर्म ऐसे होते हैं कि उन्हें मनुष्यों का साथ भी मिल जाता है। इसके विपरीत कुछ जानवर ऐसे भी होते हैं; जिनसे समाज के मनुष्य हमेशा भयभीत रहने के कारण, उनसे दूर ही रहते हैं। इस दृष्टि से भी हम देखते हैं कि सन्त तुलसीदास की कहावत की दूसरी पंक्ति; जीवन में सत्य उतरती है कि जिसका जैसा कर्म होता है, वैसा ही जीवन होता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से लेखक ने हमेशा बताया कि मात्र मन की गति ही कर्म है। कर्म जिस क्षेत्र में होता है, उस क्षेत्र की जागृति उत्पन्न हो जाती है। जैसी जागृति पैदा हो जाती है, वैसा उस क्षेत्र का ज्ञान भी हो जाता है।

जिस क्षेत्र की जागृति बढ़ती है, उस क्षेत्र के कर्म का क्षेत्र भी बढ़ता जाता है। कर्म के क्षेत्र का बढ़ना, जीव के उत्थान का चिन्ह है। जिस जीव का कर्म क्षेत्र बढ़ता ही जाएगा, वह जीव शरीर छोड़ने के पश्चात दूसरे जन्म में कोई ऐसा शरीर धारण करेगा, जिससे उसका कर्म-क्षेत्र बढ़ने में उसे पिछले कर्मों की सहायता मिलती ही जाए। इसके विपरीत भी संभव है।यदि जीव के कर्म ऐसे हैं कि कर्म-क्षेत्र; और कम होने के कारण उसकी चेतना कम होती चली जा रही है; तो इस विशेष जीवन की समाप्ति के पश्चात् दूसरे जीवन में शरीर भी ऐसा ही मिलेगा कि उसे

कर्म-क्षेत्र बढ़ाने के लिए मजबूर न होना पड़े।

यद्यपि जब तक जीव को मनुष्य का शरीर प्राप्त नहीं होता, तब तक उसके कर्म प्रकृति के आधीन होने के कारण, जीवात्मा उत्थान की ओर ही अग्रसर होगी।

समाज में बच्चे, जगत की शिक्षा हेतु स्कूल, कॉलेज जाते हैं। कुछ बच्चे पढ़ाई में अच्छे नम्बरों से पास होते हैं। ऐसे बच्चों से मां-बाप भी प्रसन्न रहते हैं; और शिक्षकगण भी। ऐसे बच्चे मां-बाप और शिक्षकों द्वारा बहुधा पारितोषिक भी प्राप्त करते हैं। इसी प्रकार

परमात्मा शरीरधारी जीवात्माओं को पृथ्वी लोक पर आत्म-विद्या प्राप्त करने हेतु भेज देता है।

पृथ्वीलोक आत्मज्ञान का विद्यालय है। इस विद्यालय में भी कुछ मनुष्य स्वेच्छा से आत्मोत्थान सम्बन्धित कर्मों के लिए समय निकालते हैं, लेकिन ऐसे व्यक्ति समाज में बहुत कम पाए जाते हैं।

अधिकतर व्यक्ति इन्द्रिय जगत के कर्मों द्वारा, इन्द्रिय जगत के धन को अर्जित करने में और नाना प्रकार के इन्द्रिय सुख के भोग में इतने लिप्त हो जाते हैं कि आत्मोत्थान के विषय में और आत्मोत्थान से सम्बन्धित कर्मों के ज्ञान की ओर मुड़ने की इच्छा भी मन नहीं उठती।

जो व्यक्ति आत्मोत्थान की ओर मुड़ जाते हैं, उनसे परमात्मा प्रसन्न होकर उन को जीवन की हर खुशी प्रदान करता है। जो मनुष्य आत्मोत्थान की बजाय आत्म-पतन कीओर मुड़ जाते हैं, उनके जीनव में समय बीतने के साथ साथ खुशियां बढ़ने की बजाय दुःख बढ़ने लगते हैं। अर्थात्

जैसा सन्त तुलसीदास जी कहते हैं कि मनुष्य के जीवन के सुख और दुःख, उसके कर्मों के आधार पर ही उसे प्राप्त होते हैं।

मनुष्य का तन पाने के पहले, जीवात्मा का मात्र आत्मोत्थान ही होता है। इस तरह साधकगण समझ सकते हैं कि प्रकृति हर व्यक्ति को सुख की ओर ही ले जाना चाहती है। लेकिन

मनुष्य का तन प्राप्त करने के पश्चात उसकी स्वतन्त्र इच्छा द्वारा जो कर्म होते हैं, वे कर्म ही उसके जीवन का सुख, दुःख और भय का कारण बनतेहैं। इसलिए अध्यात्म जगत में परमात्मा की दयालुता पर साहित्य हमेशा ही मिलता रहा है।

आत्मोत्थान मात्र आन्तरिक क्षेत्र में मन के विचरण द्वारा होता है। और पतन का कारण इन्द्रिय जगत की व्यस्तता होती है। हमारे जीवन कीअनुभूतियां हमें यह बताती हैं कि ऐसा मनुष्य ही मिलना मुश्किल है, जिसे आराम सुखदायी प्रतीत न हो।

आराम की परिभाषा है; मन का आन्तरिक जगत में विचरण।

ध्यान का कर्म और आराम का कर्म; दोनों ही आन्तरिक क्षेत्र में होते हैं। जब मनुष्य का विचरण आन्तरिक क्षेत्र में जागते हुए होता है— तब हम ऐसे आराम को ध्यान (Meditation) कहते हैं। परन्तु जब यही कर्म निद्रा की अवस्था में होते हैं, तब हम उसे ध्यान नहीं कहते। लेकिन यह अनुभूति तो सभी की है कि हम जागते हुए आराम (Relax) करें या सुषुप्ति की अवस्था में; दोनों अवस्था में आराम (Relax); मन को सुखदायी है। मनुष्य की यह अनुभूति एक जीवन सत्य है। इसके विपरीत इन्द्रिय जगत में ऐसा कोई कर्म नहीं है—जो थकावाट से परे हो।

ऐसा व्यक्ति भी नहीं मिल सकता, जिसे थकावट प्रिय हो।

इस कारण कड़ी मेहनत, जो हमें अधिक से अधिक थकावट प्रदान करती है—किसी को भी प्रिय नहीं होती। इन अनुभूतियों द्वारा भी हमें स्वयं के जीवन में प्रमाण मिलता है कि आत्मोत्थान के कर्म हमें स्थायी सुख से भर देते हैं। इन्द्रिय जगत का हर सुखदायी कर्म भी थकावट अवश्य देगा। इसी कारण हर सुख क्षणिक रह जाता है।

धीरे-धीरे समाज में यह सत्य प्रचलित हो गया कि मनुष्य के जीवन में जितना भी सुख है—वह परमात्मा या प्रकृति की देन है; और जो भी दुःख है, वह अपने बाह्य जगत के कर्मों द्वारा अर्जित है।

पृथ्वी पर हम एक वायु का सागर अनुभव करते हैं। इस प्रकार शरीर के अन्दर एक भावों का सागर भी अनुभव करते हैं। किसी को भी मन भावों से अलग होते प्रतीत नहीं होता। यद्यपि अशांत भाव और शान्त भाव प्रतीत होते हैं। जो

साधक वर्षों से ध्यान का अभ्यास कर रहे हैं—वे किसी भी ध्यान के समय अनुभव कर सकते हैं कि ज्यों-ज्यों ध्यान का समय बढ़ता है; वे शान्त होने लगते हैं। ज्यों-ज्यों शान्ति बढ़ती है; वे अपने श्वास की गति में कमी अनुभव कर सकते हैं। यह प्रत्यक्ष है कि अपने नित्य जीवन में जब भी कोई अशान्त होता है, तो उसके श्वास की गति में वृद्धि होने लगती है। इसका कारण यह है कि हर सागर का अपना एक स्वभाव होता है। सागर के सतह पर लहरें बहुत तीव्र गति की होती हैं।

सागर के तल के समीप लहरें बहुत ही शान्त होती हैं।

सागर जल का हो, या वायु का, या गर्मी का, या ठंडक का; परन्तु प्रकृति में सागर का उपरोक्त स्वभाव नहीं बदलता। पृथ्वी पर जल का एक सागर है। कोई भी मनुष्य सागर के समीप जाकर महसूस कर सकता है कि जल की लहरें अति तीव्र हैं। परन्तु इस सागर के गोताखोर अच्छी तरह जानते हैं कि ज्यों-ज्यों वे तल के समीप पहुंचते हैं—लहरें बहुत ही शान्त होती हैं। हम आसानी से अनुभव कर सकते हैं कि पृथ्वी वायु के समुद्र का तल है। यदि हम पृथ्वी से दूर ऊँचाई की ओर जाएं; अर्थात् पहाड़ों की ओर जाएं—तो हम देखेंगे कि हवा की लहरें तीव्र होती जाती हैं। इस तरह दोपहर के समय जब सूर्य बहुत तेजी से चमकता है, उस समय पृथ्वी गर्मी के सागर के तल के रूप में महसूस की जा सकती है; और ऊँचाई पर गर्मी भी बढ़ती ही चली जाती है। ऐसे न मालूम कितनी तरह के सागर हम महसूस कर सकते हैं।

परन्तु सागर का उपरोक्त स्वभाव कभी नहीं बदलता।

हमारा शरीर, सृष्टि को दो भागों में विभाजित करता है। शरीर के बाहर; और शरीर के अन्दर। बाहर की हर वस्तु इन्द्रिय द्वारा अनुभव होती है। परन्तु आन्तरिक क्षेत्र का कोई भी सत्य किसी इन्द्रिय द्वारा अनुभव नहीं हो सकता। हर व्यक्ति अपने मन को स्वयं अनुभव करता है। परन्तु बुद्धि इन्द्रियों की मदद, मन को अनुभव हेतु नहीं ले सकता। यही इस बात का प्रमाण है कि

मन आन्तरिक जगत का निवासी है और उसका निवास विचारों के समुद्र के किसी न किसी स्तर पर है।

जो व्यक्ति जागृत चेतना में मात्र इन्द्रियों की ओर मुड़ा रहता है, ऐसे व्यक्ति का मन धीरे-धीरे; पराजगत और इन्द्रिय जगत के मिलाप के समीप रहने लग जाता है।

अतः वह हमेशा ही अशांत रहेगा। दु:ख का माध्यम; अशान्त भाव की लहरें ही होती हैं। अशान्त भाव की लहरों के बिना दु:खी होना संभव ही नहीं; और जिसका मन अशान्त लहरों में निवास करने लगता है, उसका पर्याप्त पतन हो चुका है।

उत्थान की ओर मुड़ने के लिए मात्र एक ही साधन होता है कि वह किसी से इन्द्रिय जगत में ताला लगाकर प्रयासहीन अवस्था में बैठने की कला (Meditation) सीखे और इस कला में सिद्ध होने हेतु अभ्यास करे।

इस अभ्यास के समय हम बार-बार अपने में खो जाएंगे; और फिर अपने को याद आएंगे। जब भी अपने में खोएंगें, मन भावों के सागर की गहराइयों में रहेगा। इसका चिन्ह यह है कि गहराइयों की ओर जाने के समय, उसके श्वास की गति धीमी होगी। ज्यों-ज्यों श्वांस की गति धीमी होगी, वह एक विशेष आन्तरिक शान्ति को अनुभव करेगा।

इस शान्त चेतना के समय मन अपनी जिस (बीज रूपी) इच्छा के क्षेत्र में भ्रमण करेगा, उस इच्छा को पूर्ण करने वाली वृक्ष रूपी परिस्थितियां प्रकृति उत्पन्न कर देगी। जीवन की यह कला और इस कला से सम्बन्धित कर्म ही; आत्मोत्थान के कर्म हैं।

ऐसे कर्मों का अभ्यास (Meditation) करने वाले व्यक्ति का मन धीरे-धीरे भावों के सागर की गहराइयों में स्थायी रूप से निवास करने लगता है और जीवन में सब कुछ पाने योग्य होने लगता है। ऊपर बताया हुआ कर्म ही ईश्वर का ध्यान है।

मन एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं रहता।

कोई भी मनुष्य बड़ी सरलता से अनुभव कर सकता है कि उसका मन हर समय किसी न किसी ओर खिंचा रहता है। जब वह बाहर की ओर खिंचेगा, तब वह बुद्धि और इन्द्रियों को कर्मशील बना देगा। यही बाह्य जगत के अलग-अलग विषयों का ध्यान है। जब भी मन अन्दर की ओर खिंचा होगा—वह धीरे धीरे प्रयासहीन और शान्त अवस्था को प्राप्त हो जाएगा। शास्त्र हमें बताता है-

शिवम् शान्तम्

अर्थात् ज्यों-ज्यों आन्तरिक शान्ति बढ़ेगी, त्यों-त्यों मन प्रकृति की सबसे बड़ी शक्ति—शिव की शक्ति अपने में पिरोने में सफल होने लगेगा। ऐसी

चेतना में जो ज्ञान उपजता है, वह अपना ज्ञान होता है। ऐसी अनुभूतियों के सहारे ही धीरे-धीरे मन; अपने आप को जानने लगता है। साधकगण को याद रखना चाहिए कि, मात्र ध्यान कर्म (Meditation) के माध्यम से वह सब कुछ प्राप्त कर सकता है। प्राप्त करने वाली वस्तु बाह्य जगत की हो; या आन्तरिक जगत की।

आन्तरिक जगत का ध्यान; अन्दर बाहर दोनों क्षेत्रों की इच्छाओं को पूर्ण करने में सक्षम है। परन्तु बाह्य क्षेत्रों का ध्यान, मात्र बाह्य जगत का धन अर्जित करने में सक्षम है।

मीराबाई, आध्यातम इतिहास की बहुत उच्च कोटि की योगिन थीं। जब वह अपने जीवन की सफलताओं से संतुष्ट हुई, तब उनके अन्दर से एक गीत निकला-

''मैं तो राम रतन धन पायो।''

यह गीत ऐसा ही था, जैसा श्री कृष्ण का गीत; श्रीमद् भगवद् गीता है। भ० गीता में श्रीकृष्ण ने मात्र वह गीत गाया है; जो उनके अन्दर मन में घटा।

महान व्यक्तियों का चिन्ह यह है; कि वे दूसरों की बातों को नहीं दोहराते। वे मात्र, अपने अन्दर घटित हुए भावों को अपने शब्दों में व्यक्त करते हैं।

सारे महान व्यक्ति जैसे-सूरदास, कबीर, चैतन्य महाप्रभु, सन्त तुलसीदास, गुरु नानकदेव आदिने अपने अन्दर घटी हुयी बातों को गाया हैं नीचे स्तर के साधक बहुधा इन बातों की गहरायी समझने में असमर्थ होते हैं। और उच्च स्तर की चेतना की कमी में ऐसे महान् व्यक्तियों के मुखारबिन्दु से निकले हुए गीत (और भजनों) को आकर्षित लय में गाने को; ईश्वर प्राप्ति का रास्ता बना लिया। यद्यपि सत्य यह है कि

आन्तरिक क्षेत्र में विचरण; मन को एक विशेष आनन्द प्राप्त करवाता है; और उस आनन्द में वे गीत और नृत्य उपजने लगते हैं।

कहने का अर्थ यह है कि चैतन्य महाप्रभु का नृत्य तो उनकी साधना का फल था। न कि साधना पर चलने का रास्ता।

मन के पास विचरण के मात्र दो क्षेत्र हैं—अन्दर और बाहर। यही कारण है कि जीवन के सारे कर्म मात्र दो कर्मों में बंट जाते हैं; मेहनत का कर्म और आराम

का कर्म। मेहनत बिना बुद्धि के सम्भव नहीं। बुद्धि का प्रयोग हमारा ''मैं'' करता है। ''मैं'' तभी तक है—जब तक हरि नहीं है; और हरि तो अन्दर है ही,

जब ''मैं'' है, तब मन बाहर है।

''मैं'' बिना बुद्धि के क्रियाशील नहीं होता। अर्थात् बुद्धि, मात्र इन्द्रिय जगत में ही क्रियाशील होती है। इन्द्रिय जगत अनन्त विष्यों का बना है। ये विषय के क्षेत्र ही; बुद्धि के क्षेत्र हैं।

एक से ही अनेक उत्पन्न हुआ।

ज्यों-ज्यों मन इन्द्रिय जगत में विचरण करता है, उसे अनेक का ज्ञान होने लगता है। इसलिए यह समझना आसान है कि

यदि उसे 'एक'; के समीप जाना है—तो उसे उल्टी दिशा में विचरण करके इन्द्रियों और बुद्धि से परे क्षेत्र में विचरण करना है।

अर्थात् मन का विचरण आन्तरिक जगत में आराम (Relax) की परिभाषा है; और गहरा आराम तो उस समय होता है—जब मन विचारों के समुद्र के सूक्ष्म परतों में विचरण करे। समाज का एक साधारण मनुष्य समझता है कि आराम मात्र एक तरह का है। लेकिन ऊपर लेखक ने समझाया कि आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण ही आराम है। आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण निद्रा के समय और स्वप्न के समय; तो होता ही है। लेकिन जागृत अवस्था में भी सम्भव है। सत्य तो यह है कि आन्तरिक क्षेत्र में मन का विचरण हर चेतना में सम्भव है। इस तरह से यह स्पष्ट है कि

जैसे मेहनत कई प्रकार के होते हैं। इसी प्रकार आराम चेतना भी अलग अलग अवस्था में होते हैं।

सुषुप्ति और स्वप्न के अलावा, पांच प्रकार की जागृत चेतनाओं से साधकगण परिचित हैं। केवल इन्द्रिय जगत की जागृति में मेहनत और आराम; दोनों सम्भव हैं। शेष आन्तरिक जगत की जागृतियों में मात्र आराम की सम्भावना है; मेहनत की सम्भावना ही नहीं रहती। इस तरह हम देखते हैं कि यदि हम पारम्परिक सात चेतनाओं की बातें करें तो सात में से छः आराम की चेतनाएं हैं। मात्र एक चेतना मेहनत की चेतना है। उसे हम इन्द्रिय जगत की जागृति के नाम से जानते हैं।

आन्तरिक जगत के विचरण का नाम, आराम हमारे पुराने समय के ऋषि मुनियों ने रखा है।

राम का अर्थ है - सुख देने वाला। आराम का अर्थ हुआ, आ+राम; अर्थात् सुख को बुलाने का कर्म। कर्म का अर्थ है, मन का विचरण।

एक साधारण मनुष्य भी नित्य के परिश्रमपूर्ण कर्मों के पश्चात; निद्रा और स्वप्न की चेतना में आता है। ऐसा एक भी मनुष्य नहीं हो सकता जिसे गहरी निद्रा सुखदायी प्रतीत न हो। जो व्यक्ति जागृत अवस्था में मन के विचरण का अभ्यास (Meditation) करने लगते हैं, उनमें से अधिकतर व्यक्तियों का

अनुभव यह है कि अभ्यास बढ़ने के साथ-साथ प्रतिदिन का ज्यादा से ज्यादा समय—ज्यादा से ज्यादा सुखदायी बीतने लगता है।

जो व्यक्ति इन कर्मों में सिद्ध होने लगा (दूसरे शब्दों में आन्तरिक जगत की दूसरी और तीसरी चेतना को प्राप्त हो गया), उसे अनुभव में आने लगा कि आन्तरिक सुख और इन्द्रिय सुख के स्वभाव अलग-अलग हैं—

इन्द्रिय सुख क्षणिक हैं और आन्तरिक सुख स्थायी है।

इन्द्रिय सुख द्वैत जगत का सुख होने के कारण, सुख के साथ-साथ दुःख भी देगा। गीता (2.48) में श्री कृष्ण ने हमें बताया कि मात्र उन व्यक्तियों को जो आन्तरिक सुख में स्थित होकर (अर्थात् योग में स्थित होकर) इन्द्रिय सुख का भोग करेंगे, इन्द्रिय सुख, दुःखदायी नहीं होंगे। अतः ऋषि-मुनियों ने इन्द्रिय सुख और आन्तरिक सुख में कोई भ्रम न पैदा हो,

आन्तरिक सुख को एक विशेष नाम दिया—आनन्द (Bliss).

भीतर के संसार से, परिचय कर नादान।
बाहर के संसार का भी हो जाएगा ज्ञान॥,

जीवन साधने की चेतनाएं व कक्षाएं

परमात्मा और परमात्मा के अंश में, अन्तर केवल उनकी अलग-अलग जागृति के कारण है। शास्त्र में सम्पूर्ण जागृति को सात भागों में बांट दिया। आत्मज्ञान का लक्ष्य होता है - पूर्ण जागृति की प्राप्ति। जागृति में अनुभव करने की शक्ति है : अनुभव को ही ज्ञान कहते हैं। दूसरे शब्दों में जागृति में ही ज्ञान है।

(क) निद्रा (Sleeping) : निद्रा सबसे छोटी जागृति है। क्योंकि निद्रा टूटने

के बाद हमें निद्रा का ज्ञान हो जाता है, कि हमें कैसी निद्रा आई। यदि यह ज्ञान होना असंभव होता, तो निद्रा जागृति नहीं होती।

(ख) **स्वप्न (Dreams) :** दूसरी जागृति स्वप्न है। जो हमें अनुभव कराती है, कि स्वप्न के समय मन हमारे आन्तरिक क्षेत्र के किन अंकित भावों में भ्रमण कर रहा था।

(ग) **दिन-चर्या (Daily Routine) :** तीसरी जागृति हमें इन्द्रिय और बुद्धिजगत में भ्रमणों का ज्ञान कराती है।

(घ) **भावातीत जागृति (Transcendatal Consciousness) :** चौथी जागृति हमें, इन्द्रिय और बुद्धिजगत को छोड़कर, मन आन्तरिक क्षेत्र के किन भागों में भ्रमण करता है : इसका ज्ञान कराती है।

(ङ) **ब्रह्मी जागृति (Cosmic Consciousness) :** आन्तरिक क्षेत्र में भ्रमण करके मन योगशक्ति लेकर बाहर आये और इन्द्रियजगत में कर्म करे। इससे योग की शक्ति इन्द्रियों में और इन्द्रियजगत के क्षेत्र में पिरोएगी। इससे एक नई अनुभूति प्राप्त होती है कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति थकावट से भर देने वाली, मेहनत से भरे कर्मों द्वारा नहीं होती। बल्कि योगशक्ति इन्द्रियजगत में पिरोने से होगी। यहां एक नई अनुभूति उत्पन्न होती है और यह पांचवें स्तर की अनुभूति है।

(च) **ईश्वरीय (God) जागृति :** छठी अनुभूति की प्राप्ति तक मनुष्य अपनी हर इच्छा की पूर्ति कर सकता है, परन्तु केवल समय आने पर।

(छ) **अद्वैत (Union) जागृति :** यदि वह साधना में आगे बढ़ता ही जायेगा, तो सातवीं अनुभूति यह होगी, कि अब वह अपनी इच्छाओं की तत्काल पूर्ति करने योग्य हो गया है, अर्थात् समय पर भीविजय प्राप्त कर ली है। ऐसा मनुष्य अपने को ब्रह्मस्वरूप अथवा परमात्मास्वरूप मानने के लिए बाध्य हो जाता है।

यह 'मोक्ष', की स्थिति है।

ऊपर बताये हुए अनुभव तब प्राप्त होते हैं, जब अनुभवशक्ति बढ़ती ही चली जाती है। अनुभवशक्ति को शास्त्रों में चेतना कहा है। इस प्रकार से

पूर्णचेतना को सात चेतनाओं में बांट दिया गया है।

राम भगति मनि उर बसे जाके।
दु:ख लवलेस न सवनेहुं ताके॥

ध्यान-योग के लाभ
(Benefits of Meditation)

मन का विकास : मन में शान्ति, खुशी आएगी। दूसरों के प्रति विरोध कम होगा, डर खत्म होगा। नकारत्मक विचार खत्म होंगे और सकारात्मक बनेंगे। हीन भावना खत्म होगी, उतावलापन खत्म होगा। मन शक्तिशाली बन जाएगा, गुस्सा कम होगा। Depression का रोग कभी नहीं होगा।

बुद्धि का विकास : बुद्धि तेज हो जाएगी। पढ़ने की योग्यता बढ़ जाएगी। पाठ जल्दी याद होगा। आचरण अच्छा हो जाएगा। चरित्र भी अच्छा हो जाएगा। व्यर्थ की बातें नहीं होंगी। सहज रहोगे। रोजगार में वृद्धि होती है। भगवान में विश्वान बढ़ेगा।

शरीर का विकास : शरीर को ऊर्जा शक्ति मिलती है। थकावट बहुत जल्दी खत्म होती है। शरीर हल्का -फुल्का हो जाता है। बीमारी खत्म हो जाती है। काम अधिक करने की शक्ति आती है। तनाव तथा बी.पी. ठीक हो जाता है। नींद ठीक आती है। भगवान की शक्ति के द्वारा मन के प्रतिकूल विचार नष्ट हो जाते हैं और अनुकूल विचारों को भगवान की शक्ति मिलती है। यह सर्वश्रेष्ठ साधन है। 'होनी' की शक्ति बढ़ जाती है। मन में दान, पुण्य, सेवा, क्षमा आ जाते हैं और काम, क्रोध, लोभ, मोह, शोक खत्म हो जाते हैं।

व्यक्ति जन्म से महान नहीं होता, कर्म से महान होता है। ❑

होनी और करनी

—श्री महेन्द्र सिंह जांगड़ा (094676-07109)

भगवान को मानने और जानने में क्या अन्तर है?

करना : मानने के अन्तरगत आता है और

होना : जानने के अन्तरगत है।

1. करना : भगवान् को मानने में मन, बुद्धि, अहंम, ज्ञान इन्द्रियां, कर्म इन्द्रियां और शरीर, के द्वारा केवल स्थूल क्रिया ही होती है-जैसे भजन, कीर्तन, जप, रात का जग्राता करना; अथवा तीर्थ यात्रा-हरिद्वार, वैष्णुदेवी, सालासर, रामेश्वरम् इत्यादि जाना-ये सब प्रकृति की स्थूल क्रियाएं हैं।

2. होनी : यह 'होना', भी प्रकृति के द्वारा ही सिद्ध है। एकान्त में सुखदायक आसन पर बैठ कर तीन बार औंकार (ॐ) बोलना या तीन बार रुक-रुक कर राम या किसी देव का नाम सोचने पर मन का स्वयंमेव बुद्धि से सम्पर्क हट जाने पर-हमारे अन्दर, जो जन्म जन्मांत्र के संस्कार (विचार) पड़े हुए हैं-वे निकलेंगे।

यह प्रक्रिया नियमित दो या तीन बार, दिन में 30-30 मिनट; लगभग साल तक करते रहने से;

आप के विचार शून्य की ओर अग्रसर होते-होते कतई समाप्त हो जाएंगे। अत: मन (Mind) और चित्त (Consciouoness), एक हो जाएंगे। ऐसा लगेगा कि मेरा मन शान्त और एकाग्र हो गया है।

विचार दृष्य हैं, अहंम (मैं) दृष्टा है, और बुद्धि दर्शन है।

विचार (दृष्य) समाप्त होते ही; बुद्धि (दर्शन) समाप्त हो जाएगी और फिर अहंम (दृष्टा) भी स्वयंमेव समाप्त हो जाएगा।

अब आप स्वयं (जीवात्मा), परमात्मा में विलीन हो जाएंगे।

इसको कहते हैं-आत्मा का साक्षात्कार—अपने आप को जानना; मतलब है-अपने आप को जानना या परमात्मा को जानना। इसलिए कहते हैं कि परमात्मा असीम है—इसे मन, बुद्धि अथवा अहंम (सीमित) के द्वारा नहीं जाना जा सकता।

अहं (मैं) क्या कर रहा हूं?

स्वयं को स्वयं (जीवातमा), जानता है। यानी जीवात्मा, परमात्मा को जानता है। यह जानकारी स्वाभाविक है। यह जानने के बाद आप में समता आ जाएगी। समता (सन्तोष), द्वारा मुक्ति सम्भव है। फिर आप परमात्मा के अनुकूल निस्वार्थ भाव से करोगे। इस को कहते हैं; कर्म योग।

आपको परमात्मा का ज्ञान हो गया। या यों कहें; कि परमात्मा सच्चिदानन्द (सत्+चित्+आनन्द), है।

आप को होश (Consciousness), जाग गया। अब आपके द्वारा केवल अच्छे काम ही होंगे। अत:

'**करना**'—परमात्मा को मानने के अन्तरगत है। और

'**होना**'—परमात्मा को जानने के अन्तरगत है। ❑

'करत-करत अभ्यास के; जड़मति होत सुजान'

✍ श्रीमती ऊषा गर्ग
1645, अर्बन एस्टेट-।।, हिसार

जिसके साये में सारी दुनियां पलती है,
उसका साया नज़र नहीं आता।
यूं तो झोलियां सबकी भर रही हैं,
मगर देने वाला नज़र नहीं आता॥

आता है नज़र मगर उसके लिए थोड़ा प्रयास करना पड़ता है। उसी प्रयास का नाम 'ध्यान' है। ध्यान आरम्भ में नहीं हो पाता तो भगवान् का धन्यवाद करना आरम्भ करो। एक बार नहीं हज़ार बार नहीं: जितनी ज़िन्दगी के सांस हैं, उनके साथ ध न्यवाद करो और थोड़ा समय इधर देने का अभ्यास करो। आदमी बाहर की दुनियां में कुछ पाने के लिए एड़ी चोटी का ज़ोर लगा देता है। मगर उसमें भगवान की शक्ति न के बराबर होने, की वजह से काम पूर्ण नहीं होता। परन्तु जब आदमी को अन्दर की शक्ति पाने के लिए ध्यान सिखाया जाता है तो अक्सर अहंकार वश कह देता है कि बैठना बहुत कठिन है, या बैठा ही नहीं जाता। अभ्यास हो ही नहीं पाता, या लोग यहां तक कह देते हैं कि समय नहीं मिलता। परन्तु लोग यह भूल जाते हैं कि :

कब तक माया के आधीन होकर जीवन व्यर्थ गंवाओगे।
आशाओं में फंस कर, और कहां कहां जाओगे॥

आरम्भ में बैठने पर मन कहीं भी जाए तो भगवान् से विनम्र प्रार्थना करते हुए कि :

हे प्रभु जी सदा ही दया, हम पर बनाए रखना।
जो रास्ता सही हो, उस पर हमें चलाए रखना॥

भगवान् की कृपा से हमारी प्रार्थना और प्रयास से संसार के विषयों में हमारा जो मन गया हुआ है; वहां से हटकर भगवान् में लगेगा और श्रीमद् भगवद् गीता के अनुसार

हमें उस रस की, उस आनन्द की अनुभूति होगी जिसके सामने सारी दुनियां के रस फीके व तुच्छ लगने लगेंगे। भगवान कृष्ण ने भी कहा है कि यह एक ऐसी अवस्था है; जिसमें स्थित होकर व्यक्ति का मन ज़रा भी चलायमान नहीं होता। आत्म सुख प्राप्त करने के बाद व्यक्ति उससे अधिक दूसरा कोई लाभ नहीं मानता। बड़े से बड़े दु:ख में भी दुखी नहीं होता क्योंकि उस पर प्रभु कृपा बनी होती है। व्यक्ति ख़ुद सन्तुष्ट रहना चाहे या अपनी बुराईयों को छोड़ना चाहे तो उसे सफलता नहीं मिलती। जब भगवान की शक्ति मिल जाती है तो उसको छोड़ना नहीं पड़ता, छूट जाती हैं। तो चलो उठो और आज से नहीं, अभी से संकल्प लें और ध्यान में लग जाएं। करना क्या है; बस दिन में सिर्फ तीन बार आधा-आधा घन्टा आँख बन्द करके, एक बार प्रभु का नाम लेकर आपको जहां आराम मिले वहां, चाहे वह कुर्सी हो, प्लंग हो-आराम से बैठ जाना है। आराम करना है और उसी से आपको भगवान् की शान्ति मिलेगी और आपकी सांसारिक इच्छाएं भी पूरी होने लगेंगी। मन प्रसन्न रहने लगेगा। दु:ख; सुख में बदलने लगेंगे। आप पर वो ही कहावत लागू होगी : **'आम के आम गुठलियों के दाम'**। ❑

ध्यान; जीवन की गहराई के वैभवों कानिरीक्षण

—महर्षि श्री महेश योगी

'ध्यान' (Meditation); जीवन की गहराई के वैभवों का निरीक्षण है। ध्यान स्थूल क्षेत्र में सूक्ष्म स्तरों तक जाता है। सतह से आप धरातल तक जाते हैं। मनन, विचारों के स्तर पर रहने के कारण अपने भीतर सत्-चित्-आनन्द के क्षेत्र में प्रवेश करने का हमारा उद्देश्य पूरा नहीं करता। क्योंकि ध्यान के लिए :

> **हमें हमारे भीतर गहरा गोता लगाना पड़ता है। इसका अर्थ हुआ : सतह से गहराई की ओर जाना। जब कि हम गोता लगाकर बहुत नीचे पहुँचते हैं। वहां से भावातीत चेतना (Transcendental Consciousness) अर्थात् जीवन की पूर्णता के मूल्य का विकास होता है। जिससे व्यवहारिक क्षेत्र में भी पूर्णता आती है।**

आवश्यक है : केवल अपने भीतर गहराई में जाना। अब सबको अपने भीतर

गोता लगाकर अन्तर्मुखी होकर, आन्तरिक प्रतिभा का जीवन भी आरम्भ कर देना चाहिए और जीवन का पूर्ण विकास प्राप्त करना चाहिए।

> **इस ध्येय पूर्ति के लिए ध्यान ही सीधा मार्ग है, न कि उसको सोचना या मनन करना, या बार-बार इस ध्येय का दुहराना।**

हम भूखें हैं और रोटी के सम्बन्ध में पढ़ते हैं। उसके विभिन्न पक्षों पर विचार करते हैं, तो इस सबसे काम नहीं चलेगा।

रोटी पकाओ और खाओ।

बस आवश्यकता की पूर्ति हो जाएगी। रोटी का ज्ञान खाने के अनुभव के आधार पर तथ्यपूर्ण होगा।

> **यदि आत्मानन्द का अनुभव हो गया है : तब ग्रन्थों का अवलोकन कर, उसे पहचानने का यही सत्-चित्-आनन्द का क्षेत्र है। इसके बाद ही जीवन बच्चों के खेल जैसा आनन्दमय हो जाता है।**

जब हम पानी में गोता लगाना आरम्भ करते हैं, तो सतह पर तैरना खेल सा हो जाता है। जब उसे गहराई में रुकने का अभ्यास होने लगता है; तब सतह पर तैरना स्वयंमेव होने लगता है। जब हम जीवन के गहरे स्तरों की ओर चेतन तथा अवचेतन मन के सूक्ष्मतर स्तरों का अवगाहन करते हैं; तब मन की सम्पूर्ण गहराईयां हमारी चेतना में आ जाती हैं। अन्यथा मन के गहरे स्तर प्रसुप्त बने रहते हैं। क्रियाशील नहीं होते। क्रियाशीलता केवल सतह पर पाई जाती है। जब तरंगे केवल ऊपरी सतह पर होती हैं, तब वे कमज़ोर होती हैं। क्रियाशीलता से उनमें शक्ति नहीं आती। जब वही तरंगे पानी के गहरे स्तरों से सम्बन्धित होती हैं : तब वे शक्तिशाली हो जाती हैं और लहरें कहलाती हैं।

> **जब कोई तरंग समुद्र के तल से सम्बन्धित हो जाती है, तब वह बहुत ऊँची हो जाती है और उसकी शक्ति बहुत अधिक हो जाती है।**

सृष्टि

प्रस्तुति : श्री सत नारायण शर्मा (094161-64702)

ब्रह्म सत्यम्। जगत मिथ्या॥

सृष्टि दो भागों में विभाजित है; एक शरीर के अन्दरऔर दूसरी शरीर के बाहर।

आरंभ से यह प्रचलित है कि ईश्वर अर्थात् ब्रह्म का निवास अन्दर है। इससे स्वष्ट है कि जगत शरीर के बाहर के संसार को कहा गया है। उपरोक्त कहावत हमें बताती है; मात्र ब्रह्म है, शेष है ही नहीं। केवल दिखता है। जब मन की आंखों की शक्ति क्षीण होने लगती है, तब अलग-अलग मन को जगत; अलग-अलग रूप में दिखने लगता है। हम जानते हैं कि पृथ्वी पर अनन्त जीवों के रूप में अनन्त मन विचरण कर रहे हैं। समाज में कुछ ही लोग ऐसे होते हैं, जो

सत्य अर्थात् ब्रह्म को, महसूस कर सकें। शेष जीव, सत्य को महसूस न करने के कारण—उसी एक ब्रह्म को अलग-अलग रूपों में देखते हैं। इसीलिए ऊपर कहा गया है कि जगत तो मिथ्या है।

शरीर के अन्दर ब्रह्म है; अर्थात् शरीर के अन्दर जो संसार है :-

उसे ब्रह्म लोक कहते हैं।

शरीर के बाहर मन मात्र, दस इन्द्रियों (Vehicle) के माध्यम से विचरण कर सकता है। लेकिन स्वयं मन, बिना इन्द्रियों की मदद लिए शरीर के बाहर नहीं आ सकता। इसीलिए शरीर के बाहर का संसार इन्द्रिय जगत कहलाता है।

बाहर के जगत में दस इन्द्रियां और बुद्धि कार्यरत रहती हैं।

किसी भी नवजात शिशु में बुद्धि अर्थात् ज्ञान नहीं होता। उसे अपनी मां का भी ज्ञान नहीं रहता। मां उसे दूध पिलाने के लिए स्वयं उसका मुंह दूध के स्थान तक ले जाती है। जिससे मन को जीभा के माध्यम से दूध का स्वाद मिलता है और मन का विचरण दूध और दूध के स्वाद के क्षेत्र में आरंभ हो जाता है। ऐसे मन के विचरण से दूध और दूध के क्षेत्र का ज्ञान हो जाता है। धीरे-धीरे बच्चे के मन का विचरण अलग-अलग इन्द्रियों के क्षेत्र में बढ़ता ही जाता है; और उसकी बुद्धि का विकास होता जाता है। यह स्पष्ट है कि कोई भी नवजात शिशु, बुद्धि या ज्ञान लेकर जन्म नहीं लेता।

इन्द्रिय जगत की बुद्धि और ज्ञान मिथ्या हैं। इसीलिए उपरोक्त कहावत में इन्द्रिय जगत को मिथ्या जगत कहा गया है।

प्राकृतिक नियम यह है—कि जीव को ज्ञान, मात्र मन के विचरण से होता है। विचरण सत्य के क्षेत्र में हो; या मिथ्या जगत में। सत्य के क्षेत्र में विचरण,

जीव को सत्य का ज्ञान देंगे; और इन्द्रिय जगत में विचरण—मिथ्या जगत में विचरण होने के कारण, संसार की अज्ञानताएं—ज्ञान के रूप में दिखाई देंगे।

सत्य के क्षेत्र में मन के विचरण को ईश्वर का ध्यान कहते हैं।

यही ध्यान की परिभाषा है। इसी सत्य के कारण पूरे अध्यात्म जगत में यह प्रचलित है—कि सत्य का ज्ञान तो मात्र, ध्यान द्वारा ही सम्भव है।

जीव का जीवन दो भागों के बंटा है। अन्दरका जीवन और बाहर का जीवन।

बाहर का जीवन ब्रह्मलोक का वृक्ष है और अन्दर के क्षेत्र—अर्थात् पराक्षेत्र में बाहर के वृक्ष का बीज है।

पृथ्वी लोक के वृक्ष भी पृथ्वी के ऊपर होते हैं। परन्तु बीत पृथ्वी में रहते हैं। मन पराजगत में अपनी इच्छाओं के साथ रहता है। मन अपनी इच्छाओं को फलित करे—यह मन की प्रकृति है। इच्छाएं बीज हैं; और मन ब्रह्म लोक की पृथ्वी है।

पृथ्वी दो प्रकार की होती है—उपजाऊ और बंजर।

यद्यपि बंजर जमीन को भी हम खाद, पानी के माध्यम से उपजाऊ बना सकते हैं। पृथ्वीलोक पर भी हम देखते हैं कि हर पेड़ के पास पृथ्वी का कोई न कोई अंश जरूर रहता है। इसी प्रकार हम समाज में देखते हैं—कि हर प्राणी में ब्रह्म लोक की पृथ्वी (मन) का कोई न कोई अंश अवश्य है। भले यह अंश उपजाऊ हो या बंजर। कहने का अर्थ है कि 'मन' में अपनी इच्छाओं को फलित करने की शक्ति है; या नहीं।

परा से परे; अर्थात् इच्छाओं से परे का जगत, निर्गुण निराकार तत्व का सागर है। यही ब्रह्म है। ब्रह्म की शक्ति ब्रह्मलोक की पृथ्वी को उपजाऊ बनाती है। अर्थात् हर 'मन' को अपनी इच्छाओं को फलित करने में मदद करती है।

पृथ्वीके अलग-अलग अंश अलग अलग पदार्थों को पैदा करने के लिए प्रसिद्ध हैं। कुछ पृथ्वी के अंश जीव के लिए हानिकारक पदार्थों को भी पैदा करने में मददगार होते हैं।

इसी प्रकार से मन में भी दो प्रकार की इच्छाएं पाई जाती हैं; सुख

या दु:ख फैलाने की इच्छा।

ब्रह्म लोक के हर अंश की खाद, मात्र ब्रह्म की शक्ति है। ब्रह्म की शक्ति वह शक्ति है—जो किसी भी मन को सुख तो पहुंचा सकती है, परन्तु दु:ख नहीं पहुंचा सकती है।

क्योंकि सारे मन (जीव) ब्रह्म के अंश हैं। अर्थात् पुत्र हैं और कोई पिता अपने पुत्र को दु:खी नहीं करना चाहता—उसकापुत्र चाहे जितना नालायक हो।

मन, ध्यान की प्रक्रिया के माध्यम से सागर रूपी ब्रह्म में इसी प्रकार स्नान करता है—जैसे मनुष्य का शरीर जल में स्नान करता है। जल से स्नान करते समय जल का कुछ अंश, शरीर में अवश्य पिरोता है। इसीलिए जब गर्मी में हम ठंडे पानी से नहाते हैं-तब हमारा शरीर अन्दरसे ठंडा हो जाता है। यदि ठंडक के दिनों में गर्म पानी से नहाते हैं—तो पूरे शरीर में गर्मी आ जाती हैं। यही हमारे मन के अनुभव हैं।

इसी प्रकार से जब पृथ्वी रूपी 'मन' ब्रह्म के सागर में स्नान करता है, तब मन में ब्रह्म की शक्ति पिरो जाती है; और यह पिरोई हुई शक्ति, मन में बीज रूपी इच्छाओं को शरीर के बाहर के जीवन में फलित करने में कार्यरत हो जाती है।

इस तरह से हम देखते हैं कि जीव के बाहर का जीवन, ब्रह्मलोक का पेड़ है। जिसके बीज, पृथ्वी रूपी मन में हैं और खाद रूपी ब्रह्म की शक्ति इनको फलित करने में सक्षम है। इस तरह देखना आसान है कि पृथ्वी पर ब्रह्मलोक के अनन्त वृक्ष हैं; और इन अनन्त वृक्षों से ही संसार बना हुआ है। ब्रह्म की शक्ति का गुण मन को सुखी बनाना होने के कारण—खाद रूपी ब्रह्म की शक्ति मात्र उन इच्छाओं को फलित करती है, जिन इच्छाओं के फलित होने से जीवन सुखी हो सके। जिन इच्छाओं का फलित होना जीवन के लिए दु:खदाई हो सकता है, उन बीज रूपी इच्छाओं को ही नश्ट कर देता है।

बाहर के जगत में भी हम देखते हैं कि पृथ्वी में बीज बोने के कुछ दिन बाद ही पेड़ निकलते हैं।

इसी प्रकार से मन में कुछ छु:खदाई बीज—जैसे कुछपेड़ रूपी बीमारियों के बीज यदि ध्यान के पहले मन में आ गए हैं और अभीबीमारी नहीं आई है—तो ध्यान के

अभ्यास द्वारा इन बीमारियों के बीज को नष्ट किया जा सकता है और बीमारियों के बीज को नश्ट किया जा सकता है और बीमारियों से बचा जा सकता है।

केवल ब्रह्म सत्य है। अर्थात् केवल ब्रह्म है।

ब्रह्म के अलावा कुछ भी नहीं है। इसलिए संभावनाएं मात्र इतनी हैं कि मात्र ब्रह्म द्वैत जगत में अनन्त रूपों मेंपेड़ की प्रक्रियाओं द्वारा प्रकट हो जाता है। हमें ज्ञान है कि आम के बीज से जामुन का पेड़ नही निकल सकता। इसी प्रकार से पेड़ रूपी द्वैत जगत का बीज द्वैत ही होना चाहिए। यही प्रकृति है।

प्रकृति पार ब्रह्म ने इस समस्या का समाधान निकालने हेतु प्रकृति पार और पराजगत की सीमा पर अनन्त जड़ों कीस्थापना की। ये जड़ें अचेतन हैं। जब इनमें चेतना प्रवेश करेगी—अर्थात् जड़ और चेतन का विवाह होगा, तब पराजगत में चेतन और अचेतन मिलकर द्वैत जगत के अनन्त आस्तित्वों के पेड़ों के बीजों की स्थापना कर देंगे। और पेड़ रूपी द्वैत जगत, ब्रह्मलोक के पेड़ के रूप में फलित हो गया; जिसे जगत कहते हैं या बाहर का संसार कहते हैं। इन अनन्त आस्तित्वों में एक आस्तित्व जीव है; और जिस जड़ की मदद से जीव उत्पन्न हुआ—उस जीव का नाम 'मन' पड़ा।

जब तक मन में ब्रह्म की शक्ति नहीं पिरोती; मन जड़ है और अचेतन है। परन्तु ब्रह्म अर्थात् चेतन; अचेतन में पिरोने के पश्चात् अचेतन, चेतन हो जाता है। परन्तु ऐसा उस अंश में होता है, जिस अंश में चेतन, अचेतन में पिरोता है।

उदाहरण : एक बोरे में चीनी भरी है। चीनी का हर दाना समान रूप से मीठा है। एक बर्तन में पानी लें और पानी को कम ज्यादा न करें। केवल चीनी बढ़ाते चले जाएं; तो हम देखते हैं कि पानी की मिठास बढ़ती है। इस सच्चाई को लेखक ऐसे व्यक्त करेगा कि जिस अंश में चीनी पानी में पिरोती है, उसी अंश में पानी मीठा होता जा रहा है। कुछ समय के बाद चीनी घुलना बन्द कर देगी और नीचे जमना शुरू कर देगी।तब पानी को आग पर चढ़ा दें। नीचे जमी चीनी भी घुलने लगेगी; और शरीर बन जाएगा। एक समय आएगा, जब शीरे में भी चीनी नहीं घुलेगी। शीरे के पानी की इस अवस्था को हम कहेंगे कि पानी; चीनी (बूरा) बन गया। या यह भी कह सकते हैं कि इस पानी में चीनी का अंश नहीं बल्कि पूर्ण चीनी घुल

गई।

जैसा ऊपर समझाया, उसी प्रकार से एक कर्म है। जो ध्यान के नाम से प्रचलित है। इस कर्म की प्रक्रिया द्वारा मन में ब्रह्म तत्व पिरोया जा सकता है।

जिस अंश का ब्रह्मतत्व पिरो जाता है, उसी आधार पर अलग-अलग स्तर के जीवों का जन्म हो गया। जिस स्तर का जीव होता है—उसी स्तर का कर्म होता है। इस जीव के विकास के सिद्धांत के आधार पर अनन्त जीवों का जन्म हो गया। और सर्वश्रेष्ठ जीव कासमय आने पर मानव जन्म हुआ। तब शास्त्र कहता है कि सारे देवी देवताओं ने अपनी प्रसन्नता व्यक्त करने के लिए तालियां बजाई क्योंकि

मनुष्य वह जीव है, जो स्वेच्छा से जब चाहे ध्यान का कर्म करने में सक्षम है।

लेखक बता चुका है कि ध्यान वह कर्म है; जिससे जीव अपने में ब्रह्म तत्व को पिरोकर जीव के अचेतन जड़ को; अधिक चेतन बनाने में इस प्रकार सक्षम है—जैसे अधिक चीनी पानी में पिरोकर, पानी को चीनी (बूरा) बनाने में सक्षम हैं।

ऊपर हमने पिंड; अर्थात् ब्रह्मलोक और ब्रह्मांड के अस्तित्वों के बारे में चर्चा की। अब हम ब्रह्मलोक की शक्ति के विषय में चर्चा करेंगे।

ब्रह्मांड के क्षेत्र के सूर्य की शक्ति; रोशनी और गर्मी है। यदि कोई सूर्य के समीप जाने का प्रयत्न करेगा; तो बढ़ती हुई सूर्य की शक्तियों को महसूस करेगा। इसी प्रकार ब्रह्मलोक का सूर्य; स्वयं ब्रह्म है। लेखक पहले ही बताचुका है कि पृथ्वी लोक के आकाश में सूर्य है, परन्तु ब्रह्म का सूर्य ही. पूर्ण आकाश है। ब्रह्म के गुण; सत्-चित्-आनन्द से साधक पहले ही परिचित हैं।

सत-चित्-आनन्द को मनुष्यों का मात्र वह मन महसूस कर सकता है—जो अपने को इन्द्रिय जगत और बुद्धि से अलग करके, पराक्षेत्र में विचरण का अभ्यास (Meditation) करे।

अभ्यास करने से मन अपने में सत्-चित्-आनन्द को पिरोता है। अपने में

सत्-चित्-आनन्द पिरोकर; इन्द्रिय जगत में विचरण करते समय अपनी इन्द्रियों के संसार में, सच्चिदानन्द को पिरोता है। इस प्रकार बढ़ते हुए अभ्यास के साथ साथ वह इन्द्रिय जगत में विचरण करते हुए भी; सत्-चित्-आनन्द को अनुभव करता है।

ऐसे मनुष्यों योगस्थ कहलाते हैं।

श्रीकृष्ण भगवान ने गीता (2.48) में हरमनुष्य को ''योगस्थ: कुरू कर्माणि'', की सलाह दी है। दसों इन्द्रियां 'जीव' के अन्त:करण में ही होती हैं। अत: पहले इन्द्रियां ही अपने में सत्-चित्-आनन्द को पिरोती हैं; और इन्द्रियों द्वारा कर्म करते समय समस्त इन्द्रिय जगत के आस्तित्वों में पिरोती हैं, जिससे ये आस्तित्व हर मनुष्य को सुखदाई प्रतीत हो।

कर्मक्षेत्र में ये शक्तिया सत्, रज और तम का रूप धारण कर लेती हैं।

सत्, कर्मक्षेत्र में पिरोई हुई ब्रह्म की शक्ति होतीहै—जो मनुष्य को मेहनत और मेहनत की थकावट से बचाती है। इसीलिए संत तुलसी दास ने कहा है :-

जो इच्छा करिहौ मन माहीं।
हरि प्रताप कछु दुर्लभ नाहीं॥

समाज में हमेशा ही दोनों अवस्था वाले व्यक्ति रहेंगे। एक वे, जो मात्र इच्छा द्वारा ही अपनी इच्छा पूर्ति कर सकें।

दूसरे वे जो सत् की शक्ति की कमी में अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए मेहनत से भरे कर्म का सहारा, हमेशा लेते रहेंगे। ऐसे कर्मों की शक्ति को रज कहते हैं। रज, मन को इन्द्रिय जगत में व्यस्त रखने वाली शक्ति है। इन्द्रिय जगत में व्यस्त रहने के लिए—इन्द्रिय जगत के कर्मों को दिशा देने वाली शक्ति अति आवश्यक है।

सोचने की बात यह है कि यदि जीवन में दो संभावनाएं हैं, एक वह कि हम बिना अपने को थकाए जीवन की अभिलाषाएं पूरी कर सकें; और दूसरी संभावना यह कि अपने को थकाकर जीवन की अभिलाषाएं पूरी करने का प्रयत्न करें—तो वह ज्ञान जो मनुष्यों को थकाते हुए इन्द्रिय जगत के कर्मों में व्यस्त रखें; वह ज्ञान नहीं—अज्ञानता है।

इसलिए विद्वानों ने इन्द्रिय जगत के कर्मक्षेत्र के तीसरे गुण का नाम तम रखा।

सत्-रज-तम तीनों हमेशा स्थूल क्षेत्र में रहेंगे।

इनमें से एक भी शून्य होगा, तो स्थूल कर्म ही पूरे कर्मक्षेत्र में शून्य हो जाएंगे। सत्-रज-तम में जो गुण, बाकी दोनों गुणों परहावी होगा, उसी के अनुसार समाज का संचालन होगा।

अर्थात् जिस वायु मंडल का सत, रज और तम पर हावी रहेगा—उस समाज का जीवन नियंत्रित करने वाली अद्वैत की शक्ति होगी। इसी कारण ऐसे समाज व्यवस्थित होंगे। ऐसे समाजों में संतुष्टि अधिकतम रहती है।

इसके विपरीत यदि किसी समाज में रज, सत् और तम पर हावी हो गया तो ऐसे समाज के व्यक्तियों का विश्वास, दैवे शक्ति पर कम होता है और, अपने स्थूल कर्मों पर अधिक होता है। ऐसे समाज के मनुष्य मेहनत भरे कर्मों में अधिक से अधिक व्यस्त रह कर जीवन को सुखदाई बनाने का प्रयत्न करते हैं। रज के कर्म, बढ़ने से उस ज्ञान की कमी बढ़ती है—जो हमें सिखा सके कि कम से कम मेहनत से ऊँचे से ऊँचा फल कैसे मिले?

इस ज्ञान की कमी को तम कहते हैं। इस तरह हम समझने में सक्षम हैं कि तम की अधिकता में धीरे-धीरे समाज से कर्म कौशल का रास्ता लुप्त होने लगता है।

ऊपर हमने सत्-चित्-आनन्द; और सत्-रज-तम के गुणों के रूप में 'ब्रह्म' को मन में; और क्रियाओं के क्षेत्र में समझा। ईश्वरीय शक्ति 'होनी की शक्ति' के रूप में—कहने का अर्थ है, होनी के द्वारा हुई क्रियाएं बिना इन्द्रिय जगत कीबुद्धि और प्रयत्न के हो जाएं, पूरी सृष्टि में व्याप्त है। सारे वनस्पति जगत में मात्र बीज और पृथ्वी की उपजाऊ शक्ति से जड़ों का संसार; औरर पेड़ों को संसार काउत्पादन हो जाता है। समस्त जीवों में गर्भ धारण होना; और समय पर बच्चों का पैदा होना 'होनी की शक्ति' के अंतर्गत ही होता है। सभीजीवों को अलग-अलग शकलें, स्वभाव और ऊँचाई, 'होनी' ही प्रदान करती है।

'होनी', अपने में पूर्ण होनी का ज्ञान है। और पूर्ण होनी की चेतना प्राप्त

करना; ध्यान का लक्ष्य (Goal) है। ध्यान के माध्यम से, कोई भी मनुष्य अपने नरकीय मायाबी जीवन को, स्वर्ग के जीवन में परिणित कर सकता है। ❑

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-68 : जागृति, स्वप्न, सुषुप्ति ही, तीन जाग जग जान।
माया का यह क्षेत्र है, कहते विज्ञ सुजान॥

आज के साधारण मनुष्य को जागृत, स्वप्न और गहरी नींद की अवसथाओं का ज्ञान है, जो उसकी चेतना या जाग अथवा अनुभव करने की क्षमता का परिचायक है।

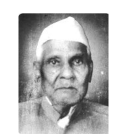

आज के मनुष्य में अपने आन्तरिक जगत को अनुभव करने की क्षमता नहीं है। आन्तरिक जगत को अनुभव करने के लिये जिस चेतना या अनुभव शक्ति की आवश्यकता है, वह मन के आन्तरिक जगत में विचरण करने से मिलती है।

आन्तरिक जगत की यह जाग अपनी गहराई और उस क्षेत्र के सूक्ष्म ज्ञान के आधार पर क्रमशः निम्न चार चेतनाओं में विभाजित की जा सकती है—भावातीत (Transcendental) क्षेत्र की चेतना, ब्राह्मी (Cosmic), चेतना, ईश्वरीय (God), और अद्वैत (Union) चेतना।

आन्तरिक जगत को अनुभव करने की क्षमता के अभाव में मनुष्य केवल बाह्य जगत को ही सब कुछ मान लेता है और उसी के आधार पर जीवन को संवारने के प्रयास करता है।

परन्तु वास्तविकता यह है कि बाह्य जगत को संवारने की शक्ति तो आन्तरिक जगत के बढ़ते हुए ज्ञान पर निर्भर करती है। बाह्य जगत की सारी सामग्री (स्थूल या सूक्ष्म सभी) जीवन को संवारने की माध्यम मात्र है,

उन्हें संवारने वाली ब्रह्म की शक्ति है, जो सब प्राणियों के भीतर अपनी पूर्ण क्षमता में विद्यमान है।

केवल बाहर कीचेतना के सहारे जीवन को संवारने कीसोचना माया का दलदल है; जिससे निकलने का जितना प्रयास किया जाता है—आदमी उतना ही अधिक उसमें धंसता जाता है।

आचार्य श्री अनिल वत्स के अनुसार हमारे लिए जीवन में महत्वपूर्ण है : आंतरिक संपदा, विवेक की संपदा, ज्ञान की संपदा; और वह सब कुछ जो भगवान ने मनुष्य मात्र के लिए सहज ही उपलब्ध कराया है। जब भी ये संपदाएं हमारे पास होती हैं; और हम उनका समुचित प्रयोग करते हैं; तो हम पाते हैं, कि हम हर क्षेत्र में विजयी होते हैं। विपरीत परिस्थितियां, बाधाएं हम खेल-खेल में पार कर जाते हैं। इसलिए जो भी ज्ञानी हैं, ध्यानी हैं अथवा ऋषि-मुनि हैं ; वे सब, जब भी कुछ देने की बात करते हैं, या देते हैं; तो वह है, मात्र सरस्वती देवी का अपूर्व खजाना : बुद्धि, विवेक और प्रज्ञा। मनुष्य मात्र के लिए यह संतों का और ज्ञानियों का परम प्रसाद है,

> **क्योंकि महापुरुष जानते हैं : कि सब दुखों का मूल अज्ञान और अविद्या (Ignorance) ही है। अंधेरा भले ही लाखों वर्ष पुराना हो, लेकिन दीप की एक किरण उसे क्षण मात्र में प्रकाश में परिवर्तित कर देती है।**

हनुमानजी को **'ज्ञानिनां अग्रगण्यं'** कहा गया है। वे ज्ञानियों में सबसे आगे माने गए हैं। यही नहीं, कहा गया है-

> **'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य' अर्थात् जिसके पास बुद्धि, विवेक का खजाना होता है; वही बलशाली होता है।**

ज्ञान, विवेक का मूल है; परंतु अफसोस यह है कि जो जितना बड़ा ज्ञानी होता है; कभी-कभी वह उतना ही बड़ा अहंकारी होता है। अहंकार मिट सके, हम जीवन में करुणा और दया ला सकें, प्रभु से यह प्रार्थना की जानी चाहिए। ज्ञान और विवेक हमारा मूल है। इस बात को समझना नितांत आवश्यक है कि

> **शरीर वृक्ष है और आत्मा मूल। आत्मा ने इस शरीर को धारण कर रखा है। जो इस आत्म-तत्व को जान सके, पहचान सके; वही सच्चा ज्ञानी है।**

सच्चा ज्ञानी वही है, वही इस जीवन में सफल है; जिसने अपने अंतर्मन के तारों को परमात्मा से जोड़ लिया है।

बस यूं समझिए कि आपका अंधकार, ज्ञानरूपी प्रकाश में परिवर्तित हो गया। परमात्मा को अग्नि स्वरूप अर्थात परमज्ञान स्वरूप कहा गया है। जहां ज्ञान है; वहीं आनन्द है। ऐसा आनन्द जो सत्य है। ❑

नोट : 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी- आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

-Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001
Mobile : 098967-89678

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर, नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग सायं 3 बजे से सायं 5 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

-सुरेश कुमार गुप्ता
866, सेक्टर 3, अर्बन एस्टेट, रोहतक-124001
E-mail : sureshgupta1936@gmail.com

PRINTED MATTER